शान्ति मन्दिर द्वारा प्रकाशित यह ई-पत्रिका आप सबको समर्पित है ।

सिद्ध मार्ग

© Shanti Mandir जुलाई २०११, संस्करण-५

इस शरीर के अन्दर जो आत्मा है उसी के होने के कारण हम इसको जीव कहते हैं ।

प्रिय आत्मन्, सप्रेम जय गुरुदेव! सिद्ध मार्ग ई-पत्रिका के पाँचवें अंक में प्रस्तुत है गुरुदेव स्वामी नित्यानन्द जी द्वारा कुछ समय पूर्व लुधियाना में दिये गये प्रवचन के संपादित अंश ।

सिद्ध मार्ग टीम

गुरुदेव का प्रवचन ।

सभी का प्रेम, सम्मान से हार्दिक स्वागत । हमने आज एक अच्छी बात सुनी कि शरीर को हम एक मोबाईल फ़ोन समझें । मोबाईल में जैसे सिमकार्ड डालते हैं तो हम उससे बोल सकते हैं और वह उपयोगी वस्तु बन जाता है । उसी तरह इस शरीर के अन्दर जो आत्मा है उसी के होने के कारण हम इसको जीव कहते हैं । चलता है, फिरता है, देखता है, बोलता है, जैसे हमें चाहिये, जो हमें चाहिये वो इस शरीर से होता है । अधिकांश मनुष्य इसका विचार करता नहीं कि इस शरीर के अन्दर वो आत्मा न हो, परमात्मा का अंश न हो, तो ये शरीर एक यन्त्र है, जिसके कुछ घण्टों बाद बदबू आने लगता है । कई बार सत्संग में कहता हूँ कि हम एक दूसरे को बहुत चाहते हैं, एक दूसरे से प्रेम भी करते है, हम कहते भी हैं कि तुम्हारे

मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य जी से कहा कि मैंने आपकी भौतिक वस्तुओं के लिए नहीं, परन्तु आपके अन्तर में जो ज्ञान है, उसके लिए अपना जीवन आपको समर्पित किया है।

बिना मेरा कैसा चलेगा ? तुम्हारे बिना मैं कैसे जिऊँ ? परन्तु जिस दिन तुम्हारे अन्दर से आत्मा निकल जाती है, जिसको डॉक्टर फिर सर्टिफिकेट देता है कि ये मर गया है, फिर चाहे उसको कितना भी प्रेम करते हैं, कितना भी हम उसको चाहते हैं, कितना भी हम उसको सजायें, परन्तु अधिक समय कोई रखता नहीं। फिर हम सोचते हैं कि इसका अन्तिम संस्कार यानि अग्नि संस्कार कब करूँ ? फिर इस विषय का चर्चा होती है, तो हम सोचें, पूछें अपने आप से कि वो सिमकार्ड इस शरीर का गया कहाँ? फ़ोन का तो हम जाकर दुकान से लेकर आ जाते हैं, उसको थोड़ा पैसा दे देते हैं। वो देता है नया सिमकार्ड, नया नम्बर, परन्तु शरीर के लिए अगर हम सोचें कि इस शरीर को पुनः जीवित करुँ, कहाँ से आत्मा लाऊँ? सब यही कहेंगे कि वो तो प्रभु के हाथ में, परमात्मा के हाथ में है। परमात्मा कि इच्छा हो तो परमात्मा इसको पुनः जीवित कर सकता है। परन्तु इसका समय समाप्त हो गया है तो वो फिर अपनी अगली यात्रा पर चला गया है। उपनिषद् में याज्ञवल्क्य अच्छी उमर वाले होते हैं। अच्छे ज्ञानी होते हैं। उनकी द्वितीय पत्नी तरुण होती है, मैत्रेयी उसका नाम होता है। याज्ञवल्क्य जी सब कुछ छोड़ कर जंगल में जाने की इच्छा करते हैं तो मैत्रेयी उनसे कहती है कि अगर मैंने इस तरुण उमर में शादी की है, आपकी सेवा करने की इच्छा रखी है तो आपसे ज्ञान प्राप्त करने के लिए, आपका धन, आपकी और सब भौतिक वस्तुओं के लिए नहीं, परन्तु आपके अन्तर में जो बुद्धि है, जो ज्ञान है, उस ज्ञान के लिए

मैने अपना जीवन आपको समर्पित किया है। तो याज्ञवल्क्य उसे पहले तो समझाते हैं कि तुम तो तरुण हो संसार में रहो, संसार का सुख, आनन्द भोगो। परंतु जब वह उनकी बात को नहीं मानती तब याज्ञवल्क्य जी फिर उसे इसी आत्मा के बारे में समझाते हैं। "नवा इह सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे दृष्ट्व्यो मन्तव्यो श्रोतव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयी।" हे मैत्रेयी! हम एक दूसरे के प्रति जो कामना रखते हैं, आशा रखते हैं, इच्छा रखते हैं, प्रेम करते हैं, ये सब उस आत्मा के कारण ही होता है। आत्मानस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति। प्रेम जो है वो आत्मा से है। इसके लिए हम एक दूसरे को चाहते हैं। क्योंकि अगर शरीर को चाहते होते तो आत्मा जब इस शरीर को छोड़कर चला जाता है तो फिर भी शरीर के साथ प्रेम होना चाहिए। परन्तु प्रेम, सम्बन्ध जो है वह शरीर के साथ नहीं, वह आत्मा के साथ है। इसलिए वे कहते हैं आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो। हे मत्रियी! अगर इस जीवन में कुछ देखने लायक है तो वह आत्मा है। अगर कुछ सुनने लायक है तो वह भी आत्मा के बारे में हम सुनें। और कुछ मनन, चिन्तन करने लायक है तो वह भी आत्मतत्व है। और उस आत्मतत्व को जब हम देख लेते हैं, उसके बारे में सुन लेते हैं, उसके बारे में ही हमारा मन विचार, चिन्तन करता हैं, तब हम यह कह सकते हैं कि मेरा जीवन पूर्ण हो गया। हमारे बाबाजी कहते थे कि जब तक मनुष्य उस आत्मा के बारे में विचार, चिन्तन करता नहीं, उसके बारे में रुचि रखता नहीं, तब तक उसका जीवन शून्य है। सब कुछ

हमारे बाबाजी कहते थे कि जब तक मनुष्य उस आत्मा के बारे में विचार, चिन्तन करता नहीं उसके बारे में रुचि रखता नहीं, तब तक उसका जीवन शून्य है।

करता है, सब कुछ है इस संसार की दृष्टि से, परन्तु प्राप्ति की दृष्टि से जो उसके साथ जायेगा, उस दृष्टिसे सब कुछ शून्य क्योंकि संसार में कितना भी भले हम एकत्रित करें, संगठित करें, वो सब हम यहाँ छोड़कर जाते हैं । हमारे पीछे वाले यही आशा रखते हैं कि यह अधिक से अधिक मेरे लिए छोड़कर जाए ताकि मेरा जीवन सुखमय हो। परन्तु हम अपने साथ क्या ले जाते हैं? तो सन्त जन यही कहते हैं आत्मा का ज्ञान, आत्मा की अनुभूति, आत्मा के बारे मे जो कुछ भी हमने अपने अन्तर मे समझ लिया है वो हमारे साथ जाता है। वेदान्त यही कहता है कि जब उस आत्म तत्त्व को हम जान लेते हैं तो सभी शून्य के आगे एक अंक लग जाता है और जब वो एक अंक लग जाता है तब सभी शून्यों का कुछ कीमत, कुछ मूल्य बनता है। तो हम जीवन में कुछ भी प्राप्त करें परन्तु जब तक वो अंक लगता नहीं, वो आत्मतत्त्व का ज्ञान हुआ है ऐसा हम समझ नहीं सकते। परन्तु जिस दिन, जिस समय, उस आत्मा को देख लिया, समझ लिया, अनुभव कर लिया, तब हम यह कह सकते हैं कि मेरा जीवन सफ़ल रहा। तो हम भी अपने जीवन में प्रयास करें, पुरुषार्थ करें, जीवन जी रहे हैं, जीवन में अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं, परन्तु साथ साथ हम थोड़ी दृष्टि अपने अन्तर की ओर डालें, अपनी आत्मा की ओर डालें कि वो आत्मा क्या है, क्यूँ उसको जानना है, क्यूँ समझना है, कैसे उसका अनुभव करना है। पूर्व वक्ता ने दूसरा एक उदाहरण तबले का दिया कि तबलची तबले का सुर लगाता है ताकि तबला बेसुरा न हो, तबला सुर में हो। वैसे ही मनुष्य सत्सगं और साधना के

जिस समय, उस आत्मा को देख लिया, समझ लिया, अनुभव कर लिया, तब हम यह कह सकते हैं कि मेरा जीवन सफ़ल रहा।

संतजन जिस आत्मा के ज्ञान से अपने आप में मस्त रहते हैं, उस ज्ञान के न होने के कारण, हम उसे समझ नहीं पाते ।

माध्यम से अपने मन का सुर, अपनी भावनाओं का सुर उस परमात्मा के साथ लगाता है। अधिकांश आप देखोगे सब अपने अपने सुर मे चलते हैं। रास्ते पर आप चलो तो कभी साईकल वाला आप से टकरा जाता है, कभी स्कूटर वाला आपके रास्ते में आ जाता है, गाड़ी चलाते हैं तो सामने कोई आ जाता है, कोई यह नहीं सोचता ये सब चल रहा। सब यह सोचते हैं कि मैं चल रहा हूँ। गाड़ी वाला हॉर्न बजाता है, साईकल वाला कुछ कहता है। एक कहानी मैंने पढ़ी थी कि एक कमरे के अन्दर कुछ लोग भजन कीर्तन करते हुऐ मस्त नाच रहे थे, अपनी ही मस्ती में खोये हुए थे । बाहर एक गूंगा देखता है कि यह सब लोग अन्दर क्या कर रहे हैं। एक बहरा भी है जिसे कुछ सुनाई नही देता है। उसको कुछ समझ नही आता है क्योंकि संगीत कभी सुना नहीं तो वह देख रहा कि ये सब लोग घूम रहे हैं, नाच रहे हैं, संगीत जो बज रहा है उसको सुनाई नही दे रहा है तो वह अपने मन ही मन सोचता है ये सब पागल लोग ऐसे ही नाच रहे हैं । नाच किस पर रहे थे, संगीत पर परन्तु वो संगीत उसको सुनाई नहीं दे रहा था। कहते हैं कि सन्तजन भी जिस संगीत से, जिस आत्मा के ज्ञान से, अपने आप में मस्त होते हैं, वह ज्ञान हमको नहीं होता है । उस अन्तर के नाद को हमने कभी श्रवण नहीं किया तो हमको उस मस्ती का पता नहीं अगर हमने कभी उसका अनुभव नहीं किया हो। तो सन्तजन हमको बताते हैं, समझाते हैं, परन्तु हमने उसके बारे मे कभी ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो हम सोचते हैं कि ये सन्त कह क्या रहे हैं । हमको लगता है कि यह कुछ पागलों जैसी बातें कर रहे हैं,

हम नमस्ते किसी व्यक्ति या शरीर को नहीं, परन्तु उसके अन्दर स्थित परमात्मा के अंश को, आत्मा को करते हैं।

कुछ और बातें कर रहे हैं जिसका मुझको कुछ पता नहीं क्योंकि हम अपने ही सुर में चल रहे हैं। परन्तु सत्संग करते करते, उनके सानिध्य में समय बिताते हुए जब हम भी कुछ अपना सुर उनके सुर से मिलाते हैं, यानि परमात्मा के सुर से सुर मिलाते हैं, तो हमको थोड़ा थोड़ा समझ आने लगता है और अगर उस समझ को हम अपने जीवन में अंगीभूत कर लेते हैं, उसका जीवन में उपयोग भी करते हैं, तो संसार के प्रति हमारी दृष्टि भी कुछ बदल जाती है। परन्तु अधिकांश सत्संग में हम जाते हैं, सुनते हैं, हमको लगता बहुत अच्छा है परन्तु उसका जीवन में हम किस तरह उपयोग करें यह हमको समझ आता नहीं। हम समझ पाते नहीं कि अगर मैं अपने अन्तर आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेता हूँ परन्तु साथ साथ में वो आत्मा सिर्फ़ एक जीव के अन्तर में ही नहीं, वही आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, उस आत्मा का दर्शन, उस का ज्ञान, सब में है, यह हम को जानना है, यही हम को समझना है। अगर आप देखगें पुराने समय में हमारे यहाँ हम जब एक दूसरे से मिलते थे तो हम नमस्ते कहकर एक दूसरे का स्वागत करते थे। आज कल हम हाथ मिला लेते हैं, और भी बहुत कुछ करते हैं। और विदेश में आज कल कहते हैं जब आप को फ़्लू हो गया हो या कुछ सर्दी बीमारी हो गयी हो तो आप हाथ एक दूसरे से न मिलायें। हमारे ऋषि मुनियों ने बहुत पहले से यह परम्परा चलाई है कि हम एक दूसरे को नमस्ते करें। हम किसको नमस्ते करते हैं? उस व्यक्ति को, उस शरीर को नहीं, परन्तु उसके अन्दर स्थित परमात्मा के अंश को, आत्मा को करते हैं । हमारे बाबाजी हमेशा ही सत्संग का शुरुआत और

सन्त कहते है जब तक हम पहले अपने आप में उसको नहीं जानते, अपने में ही दर्शन नहीं करते हैं तो फिर हमें उस आत्मतत्त्व का दर्शन और कहीं होना कठिन है ।

अन्त इन शब्दों से करते थे कि सभी का बड़े प्रेम और सम्मान से हार्दिक स्वागत है। कभी कभी वो समझाते थे कि स्वागत बैठे हुए शरीर का, बैठे हुए व्यक्ति का नहीं, परन्तु बैठे हुए व्यक्ति के अन्दर जो परमात्मा है, स्वागत उसका है। हम भी जो नमस्ते कहते हैं, नमस्ते करते हैं, नमस्ते का उद्देश्य यही है कि मैं उस परमतत्त्व को नमन करता हूँ। जैसे हम उस आत्मतत्त्व को अपने अंतर में पहचानते हैं या पहचानेंगे, फिर वही आत्मतत्त्व का दर्शन हमें और आत्माओं में या और शरीरों में होगा। परन्तु सन्त कहते हैं जब तक हम पहले अपने आप में उसको नहीं जानते, अपने में ही दर्शन नहीं करते हैं तो फिर हमें उस आत्मतत्त्व का दर्शन और कहीं होना कठिन है, मुशकिल है। साधना में हमको ध्यान करने को कहा जाता तो हम पहले आँख बन्द करने का प्रयास करते हैं कि मैं अन्तर की ओर अपने लक्ष्य को ले जाऊँ। हर व्यक्ति सर्वप्रथम अपने मन, उसके विचार, उसके अन्दर से उठने वाली भावनाएँ, इसका ही अनुभव करता है क्योंकि हमारा अनुभव अभी तक मन तक ही सीमित है, उसे गहराई में अभी तक हम अपने आप ले नहीं जा पाते हैं, उसके अन्तर में उठने वाले विचार और भावनाएँ, उनके प्रति पुनः पुनः हम जाते हैं। उसके लिए हम अभ्यास बनाऐं, रोज अभ्यास करें कि मैं बैठूँ, बैठकर अन्तर में सर्वप्रथम उठ रहे विचार, ये विचार उठ रहे हैं तो कहाँ से उठ रहे हैं, कहाँ से आ रहे हैं, इसके प्रति थोड़ा हम ध्यान दें, क्योंकि विचार मनुष्य को बनाता है । विचार जैसा भी हमारा हो वही विचार फिर हमारी

सत्संग करने का उद्देश्य यही है कि हम उस मन को जानें, मन को पहचानें, मन को समझें और उसमें उठ रहे विचारों को बदलने का प्रयास करें।

जिह्वा पर शब्द बनकर आता है और वही शब्द से हमारे जीवन में हम कर्म करते हैं। इसके लिए सन्त कहते हैं कि पहले हम अपना लक्ष्य अन्तर की ओर ले जाएँ। मेरे अन्दर से उठ रहे विचार कहाँ से उठ रहे हैं, किस तरह के विचार उठ रहे हैं और उन विचारों को किस तरह से हम परिवर्तित करें? जैसा आपने शुरुआत में सुना "लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु"- सभी सुखी हो जाऐं, कैसे सुखी हो जाऐं? तो सर्वप्रथम हम ये ध्यान दें कि हमारा मन सुख का अनुभव करे, सुख क्या है इसको समझे। सुख कोई बाह्य वस्तु से आता नहीं। अच्छे से सोफ़ा पर बैठो, मन त्रासित हो तो कितना भी अच्छा सोफ़ा हो मन उतना ही दुखी रहेगा। कितना भी बड़िया हमारा गद्दा हो, मन हमारा सुखी नहीं है तो निद्रा हमें आयेगी ही नहीं। तो हमें कोई गोली या कोई बाह्य वस्तु की आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु वही मन सुखी हो जाए, कहीं भी हम जाऐं, वो सुख हमारे साथ जाएगा। शास्त्र कहता है कि "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः" अगर हम जीवन में अपने आपको बन्धन में पाते हैं, दुखी पाते हैं, कारण मन है। अगर हम अपने आपको मुक्त पाते हैं, सुखी पाते हैं, तो भी उसका कारण मन है। सत्संग करने का उद्देश्य यही है कि हम उस मन को जानें, उस मन को पहचानें, मन को समझें, मन में उठ रहे विचारों को बदलने का हम प्रयास करें। अगर हम से यह हो सकता है तो वही मन फिर हमें सुख देने लगता है। अधिकांश हम यही सोचते हैं कि मेरा दुख का कारण और कोई है। परन्तु हम जब यह देखेगें, यह समझेगें कि हमारे दुख का कारण और कोई नही है, मैं ही

संतजन कहते हैं कि हम हमेशा अच्छे का संगत रखें । अच्छे की संगत रखने से सर्व प्रथम हमारे मन के विचार भी उस तरह के बनते हैं ।

अपने आप से अपने आप को दुखी करता हूँ। बाबाजी कहते थे जहाँ भी तुम जाओगे जहाँ कहीं भी में जाऊँगा, मैं ही तो अपने साथ अपने आप को लेकर जाऊँगा । तो जैसा मैं हूँ, जिस तरह से मेरा अन्तर है, वही तो मेरे साथ जाएगा । अगर मैं अपने आप को आनन्द का अनुभव दूँ तो मैं जहाँ भी जाऊँगा मुझे आनन्द का अनुभव होगा । अगर मैं दुखी हूँ तो जहाँ कहीं भी जाऊँ, दुःख ही दिखेगा । जिस समय अपने जीवन में आप को अच्छा अनुभव होता है आप देखोगे कि आप के साथ जुड़े हुए जितने भी लोग हैं अच्छे ही लोग हैं । क्योंकि आपको अपने जीवन का अनुभव बढ़िया लगता है तो इसके लिये आपके साथ जुड़े हुए बढ़िया, अच्छे लोग हैं। परन्तु आप का उसके विपरीत अनुभव हो, जीवन में दुःख हो, कष्ट हो, दर्द हो तो आप देखोगे कि आप के आस पास कौन है, उसी तरह के लोग हैं जिनके जीवन में दुःख है, दर्द है, कष्ट है । तो जैसा मैं हूँ वैसे का मैं संगत रखता हूँ और उसी तरह का फिर अनुभव मेरे जीवन में बन जाता हैं। इसके लिये सन्तजन कहते हैं कि हम हमेशा ही अच्छे का संगत रखें । अच्छे का जब हम संगत रखते हैं तो सर्वप्रथम हमारे मन के विचार भी उस तरह के बनते हैं । सत्संग आज सिर्फ दो घण्टे का या कल दो घण्टे का या कभी पाँच दिन का या सात दिन का नहीं परन्तु सदैव संत का संगत रखें । हम हमेशा यही प्रयास व पुरुषार्थ करें कि जब कभी भी मेरा मन इधर उधर भटके, पुनः पुनः इस मन को मैं सत्य कि ओर ले आऊँ, सत्य का उसको अनुभव कराऊँ, आनन्द का उसको अनुभव कराऊँ, वही मन मुझे सुख प्रदान

करेगा । मानव सुख की खोज में भटकता रहता है परन्तु जब तक वह अन्तर मन की तरफ नहीं झाँकता, उसे सुख की अनुभूति नहीं हो सकती क्योंकि यथार्थ सुख तो वास्तव में मनुष्य के अन्तर में ही विराजमान है, अन्यत्र कहीं नहीं । सद्गुरुनाथ महाराज की जय ।

यथार्थ सुख तो वास्तव में मनुष्य के अन्तर में ही विराजमान है, अन्यत्र कहीं नहीं ।